केदारनाथ अग्रवाल की सौन्दर्य चेतना

प्रगतिवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल प्रकृति एवं सौन्दर्य के कवि हैं, किन्तु उनकी प्रकृति चेतना जिस प्रकार छायावादी प्रकृति चित्रण से अलग है उसी प्रकार उनका सौन्दर्य बोध भी छायावादी सौन्दर्य चेतना से अलग है। प्रगतिवादी कवि सौन्दर्य को समस्त प्रकृति में व्याप्त मानते हैं। जीवन के सभी पक्षों में वे सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं। उन्हें खेत-खलिहान में, प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा में, नदी, वन, पर्वत में वह सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। उनका सौन्दर्य बोध यथार्थ की कड़ी धूप से निःसृत है। छायावादियों की भांति वे कल्पना लोक में सौन्दर्य का सन्धान नहीं करते अपितु आस-पास के जीवन में इस सौन्दर्य को देखते हैं। उन्हें यह सौन्दर्य श्रमिक व्यक्ति में भी दिखाई देता है —

"मैंने उसको जब जब देखा
लोहा देखा लोहा जैसा
तपते देखा, गलते देखा
ढलते देखा, मैंने उसको
गोली जैसा चलते देखा ॥"

उन्हें ज्वार के खेत में भी सौन्दर्य दिखाई पड़ता है —

"ज्वार खड़ी खेतों में लहराती है
कहती है मेरे यौवन को बढ़ने देना।"

उन्हें वसन्ती हवा में इस सौन्दर्य के दर्शन होते हैं —

Scanned by CamScanner

"हवा हूं हवा हूं मैं बसन्ती हवा हूं
बड़ी मस्तमौला नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूं, जिधर चाहती हूं
उधर घूमती हूं मुसाफिर अजब हूं॥"

केदारनाथ अग्रवाल की सौन्दर्य सृष्टि मार्क्सवादी सौन्दर्य चेतना से अनुप्राणित है इसलिए उनका सौन्दर्य बोध छायावादी भावुकता से अलग है। वे सौन्दर्य को जीवन से पृथक नहीं मानते। ग्रामीण जीवन का सौन्दर्य उनकी कविताओं में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। छोटा सा गांव उन्हें केसर की क्यारी सा प्रतीत होता है –

"छोटा सा गांव हुआ केसर की क्यारी सा
कच्चे घर डूब गए कंचन के पानी में॥"

कवि को पैरों से लिपटी धूल गांव की गोरी जैसी लगती है, जो उपेक्षिता होकर नीचे पड़ी हुई है –

"लिपट गई जो धूल पांव से
वह गोरी है इसी गांव की
जिसे उठाया नहीं किसी ने
इस कुठांव से॥"

चने के पौधे उन्हें सिर पर मुरैठा बांधे बुन्देलखण्डी युवक प्रतीत होते हैं –

"एक बीते के बराबर यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का॥"

कवि ने सौन्दर्य के उन्माद एवं वैभव को अपने आसपास के जीवन में देखा है जहां सावन की गुदगुदी हवा तन मन को मस्त कर देती है –

Scanned by CamScanner

सावन की गुदगुदी हवा से मस्त हुआ पट्ठे का चोला
पेड़ तले महुए में बैठा,
बजाने मदुअर मन की ।।"

इस प्रकार केदारनाथ अग्रवाल की सौन्दर्य चेतना ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई है। वह हृदय की वास्तविक अनुभूति है तथा उसमें काल्पनिक भाव बोध का नितान्त अभाव है।

प्रकृति चित्रण

~~केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी धारा के सुमित्रानंदन पंत हैं। पंत पर पहाड़ी~~

केदारनाथ अग्रवाल एक प्रगतिवादी कवि है, किन्तु जीवन्त प्रकृति चित्रण के लिए ~~अधि~~ अधिक ख्यात रहे हैं। उनका प्रकृति चित्रण छायावादी प्रकृति चेतना से बिल्कुल अलग है। उनकी प्रकृति चेतना काल्पनिक नहीं सहज और आत्मीय है। ~~ग्रामीण प्रकृति के चित्र उनकी कविता में~~ केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी धारा के सुमित्रानंदन पंत हैं। पंत पर पहाड़ी प्रकृति का काल्पनिक रंग है तो केदार पर गांव की प्रकृति का यथार्थवादी रंग। इस प्रकृति चित्रण को केदार 'प्रकृति का किसानी चित्रण' कहते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की प्रसिद्धि का कारण किसानी चित्रण ही है।

"एक बीते के बराबर यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का ।।"

यहां कलरव करते हुए पक्षी कवि को फाग गाते हुए से लगते हैं —

"जी भर फाग पखेरू गाते
ढरकी रस की राग गगरिया ।।"

Date / /
Page no.

कवि ने गेहूं को श्रमिक संघर्ष का प्रतीक मानते हुए प्रकृति के माध्यम से शोषण का विरोध चित्रित किया है –

"काली मिट्टी वाले बादल का बेरा है
टक्कर पर टक्कर देता, धक्के देता है॥"

कवि को बादल की गर्जना ऐसी लगती है मानो श्रम जीवी की गर्जना हो –

"घन गरजे जन गरजे
बन्दी सागर को लख कातर"

केदारनाथ अग्रवाल का मन खेत खलिहान की प्रकृति में अधिक रमता है। लहराती हुई ज्वार का सौन्दर्य इन पंक्तियों में देखते ही बनता है।

"ज्वार खड़ी खेतों में ऊंची लहराती है
कहती है मेरे यौवन को बढ़ने देना॥"

केदार जी की प्रकृति परक कविताओं में बुन्देलखण्ड की धरती की सोंधी महक है। केन नदी के सौन्दर्य पर मुग्ध कवि ने उसका चित्रण एक चंचल युवती के रूप में किया है –

"नदी एक नौजवान ढीठ ~~लड़की~~ लड़की है
जो पहाड़ से मैदान में आई है॥"

वसन्त में प्रकृति का रूप निखर जाता है। 'वसन्ती हवा' में कवि ने हवा का मानवीकरण करते हुए उसे मस्त मौला मुसाफिर का रूप दिया है –

"हवा हूं हवा मैं वसन्ती हवा हूं

बड़ी मस्तमौला नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूं, जिधर चाहती हूं
उधर घूमती हूं मुसाफिर अजब हूं॥"

केदारनाथ अग्रवाल की प्रकृति निराशा में आशा का संचार करती है। वसन्ती हवा सबको प्रेम का आसव पिलाकर जिलाए हुए है –

"वही हां वही जो सभी प्राणियों को
पिला प्रेम आसव जिलाए हुए हूं।
हवा हूं हवा मैं वसन्ती हवा हूं॥"

भाषा –

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बिम्बों का संश्लिष्ट रूप ही नहीं भाषा का वह फोटोजेनिक सौन्दर्य भी है कि एकदम से आंखे टकी सी रह जाती है। भाषा में जैसी सहजता तुलसी, निराला के काव्य में दिखाई देती है वैसी ही सहजता केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में भी दिखाई देती है। नदी, पेड़, फूल, घास, हवा, चिड़िया आदि के जितने सादृश्य और गतिशील काव्य बिम्ब केदार की कविता में दिखाई देते हैं उतने प्रगतिशील हिन्दी कविता में कम दिखाई देते हैं।

कविता की भाषा को लोकभाषा के निकर लाने में केदार का प्रयास उल्लेखनीय है। भाषा को वह कुछ इस ढंग से प्रयुक्त करते है कि उन्ही के शब्दों मे धूप में लहराते धान के खेत की तरह मन को छू जाती है। उनके लोकधुनों में यह गीत विशेष

Scanned by CamScanner

रूप से लोकप्रिय है -

"मांझी न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता है"

~~धीरे उठाओ मेरी पालकी मेरी नाव~~

Scanned by CamScanner